

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

गणेश वन्दना ✓

(1)

बालक मृणालिनी ज्यों तोरी, द्वारे सब काल
कठिन कराल क्यों अकाल दीह दुख को
विपत्ति हरत हठि पदिमनी के पात सम,
पक क्यों पताल पेलि पठवै कलुख को ।
दूरि कै कलंक अंक भव सीस ससि सम,
राखत है, 'कैसैदास' दास के बपुख को ।
सांकरे की सांकरन सनमुख होत तौरै,
दसमुख मुख जोवै गजमुख सुख को ॥

शब्दार्थ- बालक = बच्चा (यहाँ हाथी के बच्चे से अभिप्राय है) मृणालिनी = कमल नाल । तोरि = तोड़ना । दीह = दीर्घ, बड़े बड़े । पेलि = कुचल कर । पठवै = प्रेषित कर देते हैं, भेज देते हैं । कलुख = पाप । कै = करके । कलंक = चन्द्रमा का काला धब्बा । अंक = चिन्ह, निशान । भव = शिवजी । बपुख = वपुष शरीर । साकरे = संकट में फँसे हुए । सांकरन = संकट । दस मुख = ब्रह्मा के चार मुख + शिवजी के पाँच मुख + विष्णु का एक मुख अर्थात् चतुर्मुख ब्रह्मा, पंचमुखी शिव तथा एकमुख विष्णु । जोवे = देखते रहे हैं । गजमुख = गणेशजी ।

सन्दर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत छन्द आचार्य केशवदासजी द्वारा प्रणीत 'रामचन्द्रचन्द्रिका' नामक महाकाव्य से उद्धृत है । ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण रूप में रखे गए इस छन्द में ग्रन्थ निर्विध्वन समाप्ति के वैदिय परम्परा के अनुरूप विध्वन विनाशक गजबदन गणेशजी की स्तुति की गई है । गणेशजी को 'सिद्धि सदन' मानकर किसी मांगलिक या शुभ कार्य के प्रारम्भ में उनकी वन्दना की जाती है और कार्य की सकुशल पूर्ति के लिए उनसे प्रार्थना की जाती है ।

व्याख्या- केशवदासजी कहते हैं कि गणेशजी बड़े-बड़े भयानक दुःखी और कठिनाइयों को अकाल (अ + काल) अर्थात् बिना समय बिताए अर्थात् तत्काल तुरन्त देखते ही देखते इस प्रकार नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार हाथी का बच्चा है, जिस को सब समय अर्थात् सहज भाव से तोड़ डालता है ।

केशवदासजी कहते हैं कि गणेशजी विपदाओं या विपत्तियों को इस प्रकार दूर करते हैं, जिस प्रकार हाथी का बच्चा कमलिनी के पत्तों को तोड़ डालता है । गणेशजी पापों को कुचलकर, नष्ट करके इस प्रकार पाताल लोक को भेज देता है । जिस प्रकार हाथी का बच्चा कीचड़ को दबा देता है मसल देता है ।

केशवदासजी श्रीगणेश के पाप हरण या पापनाशक स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार शिवजी ने चन्द्रमा को अपने सिर पर धारण कर रखा है और उसके कलंक को भी मिटा दिया है । (अथवा शिवजी ने चन्द्रमा के कलंक को मिटाकर अपने सिर पर धारण किया है) उसी प्रकार गणेशजी महाराज भी अपने सेवक के अथवा जिस पर कृपालु होते हैं, उसके समस्त कलंकों अर्थात् दोषों, अपराधों, पापों इत्यादि को दूर करके उसकी सम्मानपूर्वक रक्षा करते हैं अथवा उसे विपत्तियों और कलंकों से बचाते हैं ।

गणेशजी संकट से घिरे हुए व्यक्ति की, विपत्तियों रूपी जंजीरों को तुरन्त तोड़ देते हैं ।

यही कारण है कि दसमुख अर्थात् ब्रह्म (4 मुख वाले), विष्णु (1 मुख वाले) तथा महेश (5 मुख वाले) सभी गणेशजी का मुख देखते हैं, अर्थात् उनकी पूजा करते हैं, उन्हें प्राथमिकता देते हैं अथवा उनकी प्रसन्नता पाने के लिये, उनकी दया दृष्टि की आशा में उनकी ओर देखते हैं-

टिप्पणी- (1) ब्रह्मा विष्णु और शिव को भी गणेशजी की कृपा का याचक बताकर गणेशजी के महत्व का निर्देश किया है। इस पर विष्णु पुराण का प्रभाव लक्षित होता है :

(2) 'दस मुख शब्द के प्रयोग में केशवदास की चमत्कार-प्रियता सहज द्रष्टव्य है : इस शब्द का अर्थ सूरदास के दृष्टि कूट पदों की भाँति कठिनाई से प्राप्त होता है- दशमुख = ब्रह्मा 4 मुख + विष्णु का 1 मुख + शिवाजी के 5 मुख। (4 + 1 + 5 = 10)

(3) प्रसाद गुण : (4) अभिधा और व्यंजना शब्दशक्ति : (5) ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग (6) कवित्त छन्द : अलंकार दर्शन-

(अ) उपमा (i) विपत्ती हरत हठि पद्मिनी पात सम ।

(ii) पंक ज्यों पताल पेली पठवै कलपकों ।

(iii) दरि कै बपुखको ।

(ब) उदाहरण- बालक दुख को ।

(स) श्लेष- सांकरन में- (1) संकट, (2) श्रृंखला, जंजीर ।

(द) रूपक- सांकरन में-संकट रूपी बेड़ियों को ।

(य) यमक- (i) दसमुख में और गजमुख में । (ii) केसौदास औरदास में ।

अयोध्यापुरी-वर्णन

(2)

ऊँचे अवास । बहुध्वज प्रकाश ।

सोभा विलास । सोभै अकास ॥

अति सुन्दर अति साधु । थिर न रहत पल आधु ।

परस तपोमय मानि । दण्ड धारिनी जाति ।

शब्दार्थ- अवास = आवास, घर, महल । बहुध्वज = अनेक झण्डे, पताकाएँ प्रकाश = चमक रहे थे । सोभा विलास = शोभा फैल रही थी । अकाश = आकाश । साधु = सरल, सीधा । थिर = स्थिर । आधु = आधा । दण्डधारिणी = दण्ड धारण करने वाली तपस्विनियाँ ।

प्रसंग- विश्वामित्रजी अपने तप की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगने के लिए अयोध्या नगरी में आए । अयोध्या के वैभव और ऐश्वर्य को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए । वहाँ के ऊँचे भवनों और उन पर फहराती हुई पताकाओं का वर्णन प्रस्तुत छन्द में किया गया है ।

व्याख्या- केशवदास कहते हैं कि अयोध्या में ऊँचे-ऊँचे भवन हैं, जिन पर नाना प्रकार के झण्डे फहराकर उनकी शोभा को और भी बढ़ा रहे हैं, प्रकाशित कर रहे हैं । ये झण्डे सौंदर्य उपकरण बनकर आकाश में सुशोभित हो रहे हैं, ये सुन्दर और सीधे झण्डे एक पल को भी स्थिर नहीं होते हैं, अर्थात् हर घड़ी हिलते रहते हैं, लहराते रहते हैं, इन ध्वजों को निरन्तर हिलते देखकर ऐसा लगता है कि ये कोई महान् तपस्वी हैं, जो एक पल को भी विश्राम न लेकर साधना या तपस्या में लगे रहते हैं । झण्डों में लगे हुए दण्डों को देखकर केशवदास कल्पना करते हैं कि ये झण्डे न होकर दंड (दंड) धारण करने वाली तपस्विनियाँ हैं ।

टिप्पणी- (1) यहाँ केशवदास ने हंडी में लगे हुए झण्डों का श्र्लक्षणात्मक वर्णन किया है और उनके लिए विविध सम्भावनाएँ या कल्पनाएँ की हैं, जो मौलिक होने के साथ ही मार्थक भी हैं। (2) प्रसाद और माधुर्य गुण। (3) अभिधा और व्यंजना शब्द शक्ति (4) वृत्र भाषा का प्रयोग (5) अलंकार-

(अ) उपमा (i) परम तपोमय मानि ।

(ii) दंडधारिणी ज्ञानि ।

(ब) विगंधाधाम- ध्वजाओं को माधु कहकर उनकी आस्थिरता के वर्णन में ।

(स) अनुप्रास- सहज स्पष्ट ।

(3)

सुभद्रान गिरिगगन सिखर ऊपर, उदित औषधि सो गनौ ।

बहु वायुवस वारिद बहोरहि अलजि दामिनी मनौ ॥

अति किधौ रचि र प्रताप पावक प्रगट सुन्दर को चाल ।

किधौ सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलत भली ॥

शब्दार्थ- सुभ = शुभ, मंगलमयी। द्रोण = द्रोण नामक पर्वत, द्रोणाचल। गिरिगगन = पर्वत समूह या पर्वत श्रेणियाँ। सिखर = चोट। उदित = उगा हुई। औषधि = वृष्टी। गनौ = समझो गिनो। वायुवस = वायु के वशीभूत, हवा के कारण। वारिद = बादल। बहोरहि = लौटती हुई। अलजि = उलझकर। किधौ = अथवा। रचि = रचकर, सुन्दर। सुदेश = सुन्दर। करी = बनाई हुई, निर्मित। दिवि = दिशाओं में, आकाश में। भली = अच्छी तरह से।

प्रसंग- केशवदासजी अवधपुरी की शोभा का वर्णन करते हुए वहाँ के उच्च भवनों पर फहराती हुई पताकाओं को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रस्तुत छंद में उन्हीं पताकाओं का वर्णन है।

व्याख्या- अयोध्या के उच्च भवनों पर फहराती हुई पताकाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो द्रोणाचल की चोटियों पर शुभ (मंगलकारिणी) बड़ी-बूटियाँ उग रही हों। अथवा तीव्र वायु के वशीभूत होकर (पृथ्वी पर गिरकर आकाश की ओर जाने वाली विद्युत पुनः लौटकर उलझ गई हो। अथवा रघुवंश के प्रबल प्रताप की अग्नि जो उन्हें देवताओं द्वारा राज हुई थी) पृथ्वी पर समा सकने में लौटकर देव लोक को जा रही हो (लाल रंग के ध्वजों के लिए यह उल्लेख है) अथवा मेरे द्वारा बनाई हुई गंगा ही (श्वेत ध्वजों के रूप में) आकाश में ब्रौंदा कर रही हो। भाव यह है कि विभिन्न रंगों में झण्डे जो अयोध्या में वरों के ऊपर फहरा रहे हैं, बहुत सुन्दर हैं और उन्हें देखकर विभिन्न कल्पनाएँ मन में उतरती हैं।

टिप्पणी- (1) केशवदासजी की कल्पना की ऊँची उड़ान दर्शनीय है, (2) इस छंद में रघुवंश या रघुकुल का प्रबल प्रताप व्यंजित है, (3) वृत्र भाषा (4) अभिधा और व्यंजना शब्दशक्ति, (5) प्रसाद और माधुर्य गुण, (6) हरिगीतिका छंद का प्रयोग (7) अलंकार।

(अ) उपमा- सुभ-द्रोण-गनौ ।

(ब) उपमा- बहुवायु-मनौ ।

(स) सन्देह- (i) अति किधौ-भली ।

(द) अनुप्रास- सहज स्पष्ट ।

(4) ✓

जीति जीति कीरति लई मजुन को यहू भाँति ।
 पुर पर बाँधी सोभिजे, मानो तिनकी पाँति ।
 सम सब घर सोभे, मुनिमन लोभे, गिपुगमन लोभे देखि मयै ।
 बहुदुंधुभि बाजे-जनु धन गाजे, दिग्गज लाजे मुनत जयै ॥
 जहँ तहँ स्तुति पढ़ौ विघ्न न बहू ही, जय जय मढ़ौ, मकर दिसा ।
 सबई सब विधि छम, बसत तथाक्रम देवपुरी सम, दिवस निमा ।

शब्दार्थ- पुर = नगर। सोभिजे = मुशोभित होती है। तिनकी = उनकी। पाँति = पंक्ति। सम = समान। सोभे = सुन्दर लगते हैं। लोभे = लुब्ध होते हैं, ललचा जाते हैं। सोभे = शुभ्य होते हैं, ईर्ष्या से जल उठते हैं। दुंधुभि = नगाड़े। दिग्गज = दिशाओं में रहने वाले हाथी। स्तुति = वेद। विघ्न = उत्पत्ति। मढ़ौ = छा जाती है, मँडित हो जाते हैं। जल = यश, कीर्ति। छम = क्षम या क्षमता से युक्त, समय, सक्षम। = यथाक्रम = व्यवस्थापूर्वक। देवपुरी = इन्द्रलोक।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में आचार्य केशवदास ने अयोध्या के भवनों पर फहराने वाले झण्डों की शोभा के साथ-साथ नगर के भवनों और मन्दिरों का वर्णन करते हुए वहाँ के वैभव और ऐश्वर्य का चित्र अंकित किया है।

व्याख्या- केशवदासजी कहते हैं कि अयोध्या नगरी के भवनों और महरतों पर फहराती हुई श्वेत पताकाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो राजा दशरथ ने अपने शत्रुओं की कीर्ति को जीतकर, उन्हें विविध उपायों द्वारा हराकर उनके यश को छीन लिया और उस यश को (यश का रंग श्वेत माना जाता है) इन झण्डों के रूप में पंक्तिबद्ध कर दिया है। भाव यह है कि नगर में फहराने हुए सफेद ध्वज मानो राजा दशरथ की कीर्ति के प्रतिचिम्ब हैं।

आगे केशवदासजी अयोध्या के घरों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यहाँ सारे घर समान लगते हैं, अर्थात् सभी घरों में समान ऐश्वर्य और मात्र-सज्जा है। सभी लोग समान रूप से सम्पन्न हैं। इन सुन्दर भवनों को देखकर मुनि लोग भी तिनको संसार में कोई मोह या रति नहीं होती, आमन्त हो जाते हैं तथा शत्रुओं के हृदय में इन सुन्दर सदनों को देखकर क्षोभ, दुःख अथवा ईर्ष्या उत्पन्न होती है। अयोध्या में स्थान-स्थान पर उनके नगाड़े बजते हैं, त्रिनका स्वर ऐसा प्रतीत होता है मानो बादल गरज रहे हों। इस नाट या नगाड़ों की ध्वनि को सुनकर दिशाओं में रहने वाले शक्तिशाली हाथी भी लज्जित हो जाते हैं। भाव यह है कि नगाड़ों का शब्द बहुत तीव्र होता है।

अयोध्या में स्थान-स्थान पर जहाँ-जहाँ वेदों का पाठ होता रहता है, त्रिनका फल यह होता है कि अयोध्या में विघ्न अर्थात् प्राकृतिक उत्पात नहीं फैलते हैं। इस नगर में सभी दिशाओं से जय-जयकार का स्वर होता रहता है। यहाँ सभी लोग सब प्रकार के समर्थ हैं और ठीक प्रकार से व्यवस्थित जीवन बिता रहे हैं। यहाँ के शान्त सुन्दर जीवन को देखकर ऐसा लगता है जैसे यह देवलोक हो। रात हो या दिन, यहाँ सर्वत्र शान्ति और आनन्द की वर्षा होती रहती है।

टिप्पणी- (1) अयोध्या का सुन्दर वर्णन हुआ है, (2) प्रसाद और माधुर्य गुण, (3) अभिधा शब्दशक्ति, (4) अलंकार-

- (अ) उत्प्रेक्षा- जनु धन गाजे ।
 (ब) व्यतिरेक- दिग्गज लाजे, मुनत जयै ।
 (स) उपमा- देवपुरी सभा ।
 (द) अनुप्रास- सहज स्पष्ट ।

(5)

कविकुल विद्याधर, सकल कलाधर, राज राज वर वेष बने ।
गनपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने ॥
सेनापति, बुधजन, मंगल गुरुजन, धर्मराज मन बुद्धि धनी ।
बहु सुभ मनसाकर करुणामय अरु, सुर तरगिनी सोभ सनी ॥

शब्दार्थ- कविकुल = कवियों का समूह शिष्यों सहित शुक्राचार्य । सकल = सभी ।
कलाधर- (1) कला या विद्या को धारण करने वाले, देवजाति विशेष (2) चन्द्रमा । सकल
कलाधर = चौंसठ कलाओं को जानने वाले । राम राज = राजाओं के राजा अर्थात् राजा
अर्थात् राजाधिराज दशरथ (3) इन्द्र या कुबेर । वर = सुन्दर । बने = सजे हुए । गनपति =
(1) सेनापति; (2) गणेशजी । पशुपति = (1) पशुओं के स्वामी; (2) महादेवजी । सूर =
(1) वीर, (2) सूर्य । सेनापति = (1) सेनाध्यक्ष, (2) कार्तिकेय । बुधजन = (1) बुद्धिमान
लोग, (2) बुध नामक नक्षत्र । मंगल = (1) मांगलिक शुभ, (2) मंगल नामक नक्षत्र । गुरुगण
= (1) वशिष्ठ इत्यादि गुरुजन, (2) बृहस्पति नामक नक्षत्र, देवगुरु बृहस्पति । धर्मराज =
(1) धर्माधिकारी, न्यायकर्ता, (2) यमराज । मनसाकर = (1) मनसा या इच्छा पूर्ण करने वाला
कल्पवृक्ष, (2) राजा दशरथ । करुणामय = विष्णु राम । सुरतगिनी = (1) देव नदी गंगा;
(2) सरयू । सोभ सनी = शोभा से युक्त ।

प्रसंग- प्रस्तुत छन्द में आचार्य केशवदास ने अयोध्या के ऐश्वर्य और सौन्दर्य का वर्णन
करते हुए उसे देवलोक या इन्द्रपुरी की समतुल्य सिद्ध किया है । स्वर्ग में जो-जो वस्तुएँ हैं, वे
अयोध्या में भी हैं । यहाँ श्लेष के द्वारा अयोध्या और स्वर्ग की समता स्थापित करने में केशव
ने पांडित्य का प्रदर्शन किया है ।

व्याख्या- अयोध्या की शोभा पर मुग्ध हुए विश्वामित्र जो उसे स्वर्ग के समान सुन्दर
और सुखपूर्ण मानते हैं । स्वर्ग में कविकुल शुक्राचार्य (अपने सम्पूर्ण शिष्यों के साथ) विराजमान
है, यहाँ अयोध्या में भी कविकुल अर्थात् कवियों के समूह हैं । स्वर्ग में विद्याधर नामक एक
विशेष देव जाति वसती है, अयोध्या में भी विद्याधर अर्थात् विद्वान लोग हैं । स्वर्ग में सकल
कलाधर अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित है, अयोध्या में भी (सम्पूर्ण) अर्थात् चौंसठ कलाओं को
धारण करने वाले (कलाधर) विद्यमान हैं । स्वर्ग में राज-राज कुबेर अथवा इन्द्र का निवास है ।
अयोध्या में भी राज-राज (राजाधिराज) दशरथ सुन्दर वेश धारण किये हुए विराजमान हैं ।

स्वर्ग में सुखदाता गणेश का वास है तो अयोध्या के गणाध्यक्ष (सेनापति) भी सबको
सुख देने वाले हैं (उनके कारण सब लोग निर्भय होकर सुख भोगते हैं) । स्वर्ग में योग्य शिवजी
रहते हैं; अयोध्या के पशुपति (पशुओं का पालन करने वाले) भी बहुत योग्य है । स्वर्ग में सूर्य
तथा उनके सहायक या सहयोगी अगणित ग्रह नक्षत्र हैं । अयोध्या में भी वीरों और उनके सहायकों
की कोई गिनती नहीं, अर्थात् यहाँ असंख्य बड़े-छोटे वीर रहते हैं ।

स्वर्ग में सेनापति अर्थात् कार्तिकेयजी है, यहाँ भी बड़े-बड़े सेनापति रहते हैं । स्वर्ग में
बुध, मंगल और गुरु (बृहस्पति) नामक नक्षत्र हैं तो अयोध्या में भी बुद्ध (विद्वान) लोग हैं । मंगल
अर्थात् विश्व का कल्याण चाहने वाले लोग हैं तथा गुरु लोग हैं । स्वर्ग में बुद्धि और मन को
वश में रखने वाले धर्मराज (यमराज) हैं तो अयोध्या में भी मन और बुद्धि का सन्तुलन रखने
वाले धर्मराज अर्थात् धर्माधिकारी या न्यायाधिकारी है ।

स्वर्ग में नाना सुन्दर इच्छाओं की पूर्ति करने वाला (मनसाकर) कल्पवृक्ष है, अयोध्या में
समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले राजा दशरथ हैं । स्वर्ग में करुणामय विष्णु हैं, तो अयोध्या

में करुणामय राम हैं। स्वर्ग में सुसरिता गंगा सुशोभित है, तो अयोध्या में देवनदी के समान मुन्दर सरयू बहती है।

टिप्पणी- (1) श्लेष युक्त (दो अर्थों वाली) शब्दावली के प्रयोग में केशव के पाण्डित्य प्रदर्शन के साथ चमत्कार प्रदर्शन की झाँकी भी मिलती है।

(2) प्रसाद गुण (3) अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति, (4) श्लेष मुद्रा और काव्यलिंग अलंकारों का मिश्रित प्रयोग, (5) ब्रज भाषा।

(6) ✓

पण्डितगन पण्डितगुन, दण्डितमान दाखए।

छत्रियवर धर्मप्रवर क्रुद्ध समर लेखिए ॥

वैश्य सहित सत्य, रहित पाप प्रगट मानिये।

सुद्र सकति विप्र भगति, जीव जगत जानिये ॥

शब्दार्थ- पण्डितगुन = गुणों से युक्त। दण्डितमति = जिन्होंने बुद्धि को संयमित कर रखा है। धर्मप्रवर = धर्म में रुचि रखने वाले। समर = युद्ध में। लेखिए = समझिए। प्रगट = स्पष्ट, निश्चल। सकति = शक्ति। विप्र = ब्राह्मण। भगति = श्रद्धाभाव रखने वाले।

प्रसंग- अयोध्या में राम और लक्ष्मण को लेने के लिये आए हुए मुनिवर विश्वामित्र जी अयोध्या की साज-सज्जा और ऐश्वर्य पर मुग्ध हो गए हैं। साथ ही यहाँ के लोगों के सदाचार एवं धर्माचरण की भी वे सराहना करते हैं। अयोध्या में वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठा देखकर वे प्रसन्न हो जाते हैं। प्रस्तुत छन्द में चारों वर्णों के लोगों को अपने-अपने कर्तव्यों में सजग देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं। उनको यह देखकर हार्दिक आनन्द प्राप्त होता है कि अयोध्या में रहने वाली चारों जातियाँ या वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अपने निर्दिष्ट कार्यों में लगे हुए हैं।

व्याख्या- विश्वामित्रजी कहते हैं कि अयोध्या में रहने वाले पण्डित अर्थात् ब्राह्मण वास्तव में पण्डित (विद्वान) हैं और अपने गुणों से सुशोभित हैं, अर्थात् उनकी पूजा या सम्मान केवल इसलिए नहीं होता कि वे जन्मता (जन्म के) ब्राह्मण हैं, वरन् वे गुणवान हैं और साथ ही उनकी बुद्धि (मति) भी संयमति (दण्डित) है। क्षत्रिय लोग धर्मध्वज हैं। धर्म से उनकी रुचि है और युद्ध में वे भयानक क्रोध करते हुए देखे जाते हैं। अयोध्या के वैश्यगण सच्चे और पापों से शून्य हैं तथा शूद्र लोग शक्ति के उपासक होते हुए भी ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं।

टिप्पणी- (1) यहाँ वर्ण व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया गया है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था के कारण विश्वामित्रजी अयोध्या के समाज की प्रशंसा करते हैं। (2) प्रसाद-गुण, (3) अभिधा शब्दशक्ति, (4) अनुप्रास अलंकार।

(7) ✓

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामनि नारि।

बहु सत मख धूमनि धुपति अंगनि हरि की सी अनुहरि ॥

चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रन 'केशवदास' निहारि।

जनु बिस्वरूप को अमर आरसी रची बिरचि बिचारि ॥

जग जसवन्त बिसाल, राजा दसरथ की पुरि ॥

चन्द्र सहित सब काल, भालथली जनु ईस की ॥

शब्दार्थ- (1) अगारनि = घरों, भवनों। पगारनि = परकोटा, चारदीवारी (2) परिचर्या का सेवा में निपुण। चिन्तामणि नारी = (1) चिंतामणि निर्मित, (2) वहाँ की नारियाँ चिन्तामणि

के सवान दुख दूर करने वाली है। बहुमत = सैकड़ों। मख = (1) यज्ञ, (2) मुख। वृमनि = धुओं। अगनि = (1) आँगन, (2) अंग। हरि = विष्णु। अनुहारि = समानता। चित्रा = चित्रकार, शिल्पी। विश्व रूप = विश्व के स्वरूप के दर्शन के लिए। अमल = मल रहित, स्वच्छ। आरसी = दर्पण। विरंचि = ब्रह्मा। जसवन्त = यशस्विनी। चन्द्र = रामचन्द्रजी रूपी चन्द्रमा। भालधली = ललाट, मस्तक इम = शिवजी।

प्रसंग- अयोध्या की शोभा को देखकर मुग्ध हुए विश्वामित्रजी उनकी प्रत्येक वस्तु पर दृष्टिपात करते हैं। प्रस्तुत छन्द में उन्होंने यहाँ के उच्च भवनों, उनके परकोटे इत्यादि के वर्णन के साथ यहाँ के नर-नारियों का भी वर्णन किया है। उन्हें ऐसा लगता है कि ब्रह्माजी ने अयोध्या को एक निर्मल दर्पण जैसा बनाया है, जिसमें विश्व का सम्पूर्ण सौंदर्य झलक रहा है।

व्याख्या- केशवदासजी कहते हैं कि अयोध्या के अत्यन्त ऊँचे महलों पर पर-कोटे बने हुए हैं, जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि वे चिन्तामणि नामक मणि से बने हुए हैं। (दूसरा अर्थ) अथवा अयोध्या के उच्च भवनों में रहने वाली स्त्रियाँ बहुत सेवा भाव वाली हैं और अपने पतियों को सम्पूर्ण चिन्ताओं, कष्टों इत्यादि को उसी प्रकार दूर कर देती हैं, जैसे चिन्तामणि नामक मणि को पाकर मनुष्य चिन्तामुक्त हो जाता है। अयोध्या के घरों के आँगनों में सैकड़ों प्रकार के यज्ञ होते रहते हैं, जिनके धुएँ से भी वे काले पड़ गए हैं अथवा (दूसरा अर्थ) अयोध्या के पुरुषों के शरीर के अंग नाना प्रकार के यज्ञ धर्मों (यज्ञ के धुएँ) से काले पड़ गए हैं और ऐसे वर्ण के हो गए हैं कि वे हरि (विष्णु) के समान जान पड़ गए हैं। (श्याम वर्ण हो गए हैं)

केशवदासजी कहते हैं कि अयोध्या के भवनों पर चित्रकारों ने अनेक विचित्र (विलक्षण) चित्रों का निर्माण कर रखा है, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो विधाता ने अयोध्या को विश्व के सम्पूर्ण रूप की झाँकी कराने के लिए उसे एक स्वच्छ दर्पण के रूप में बनाया हो। भाव यह है कि जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में विभिन्न वस्तुओं के प्रतिबिम्ब बहुत साफ दिखाई पड़ते हैं, इसी प्रकार अयोध्या में विश्व की समस्त श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं।

अन्त में केशवदास (विश्वामित्र के माध्यम से) कहते हैं कि राजा दशरथ की यह नगरी (अयोध्या संसार में बहुत यशस्विनी अर्थात् प्रसिद्ध है) अयोध्या में श्री रामचन्द्रजी को देखकर ऐसा लगता है मानो यह शिवजी का मस्तक है जिस पर चन्द्र (रामचन्द्र) विराजमान है।

टिप्पणी-- (1) पाँडित्य वर्णन है। (2) प्रसाद गुण, (3) अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति। (4) व्रज भाषा (5) अलंकार--

(अ) उपमा-- हरि की सी अनुहारि।

(ब) उत्प्रेक्षा-- जनु बिस्वरूप विचारि।

(8) ✓

पंडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ।

सिंह चढ़ी जनु चण्डिका, मोहित मूढ़ अमूढ़ ॥

मोहित मूढ़ णूढ़, देव संग दिति सी सोहै।

सबे सिंगार संदेह मनो रति मनमथ मौहै ॥

सबै सिंगार सदेह सकलसुख सुखमा मंडित।

मनो सची विधि रची विविध वरनत पण्डित ॥

शब्दार्थ-- पंडित = विद्वान। सिगरी = सम्पूर्ण, सारी। पुरी = नारी, अयोध्या। गिरा = वाणी, सरस्वती। गति = स्वरूप। गूढ़ = रहस्यमयी, गुप्त। चंडिका = चंडी देवी, दुर्गा देवी। मोहित = मुग्ध बनाती है, मोहित करती है। मूढ़ = मूर्ख, अज्ञानी। अमूढ़

= जो मूर्ख नहीं हैं, ज्ञानी। दिति = दैत्यों की माताजी दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप की पत्नी थी। रति = कामदेव की पत्नी। मनमथ = कामदेव। सुखमा = सुपमा, शोभा, सुन्दरता। सची = इन्द्राणि, इन्द्र की पत्नी। वरनत = वर्णन करते हैं।

प्रसंग-- मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र अपने यज्ञों में राक्षसों का हस्तक्षेप देखकर चिंतित होकर राजा दशरथ के पास जाता है और उनसे राम लक्ष्मण को यज्ञों की रक्षा के लिए साथ भेजने का अनुरोध करते हैं। अयोध्या में पहुँचकर वे वहाँ के वैभव से बहुत प्रभावित होते हैं। साथ ही वहाँ के लोगों की विद्वता से भी प्रसन्न होते हैं।

व्याख्या-- अयोध्या की श्री सम्पन्नता का वर्णन करते हुए विश्वामित्रजी कहते हैं कि सारा नगर अतीव विद्वान है अर्थात् नगर के सब लोग विद्वान हैं। ऐसा लगता है कि वाणी या ज्ञान की देवी सरस्वती स्वयं गुप्त वेश बनाकर यहाँ निवास करती हैं अथवा ऐसा लगता है कि अयोध्या के रूप में स्वयं चंडीदेवी सिंह पर सवार होकर मूर्खों और अज्ञानियों को समान रूप से अपनी माया से मोहित कर रही है। भाव यह है कि जिस प्रकार महामाता भगवती अपनी माया से विश्व को मोहित कर लेती हैं, उसी प्रकार अयोध्या के सौन्दर्य और ऐश्वर्य को देखकर सभी लोग मंत्र मुग्ध हो जाते हैं चाहे वे मूर्ख हों या ज्ञानी।

आगे विश्वामित्रजी कहते हैं कि सिंह पर रूढ़ देवी चंडिका सी प्रतीत होने वाली अयोध्या नगरी मूर्खों और विद्वानों को मुग्ध करती है और ऐसी सुशोभित होती है मानो दैत्य की माता दिति, देवताओं के साथ विराजमान हो। अथवा, अयोध्या (सुन्दर, सुसज्जित होने के कारण) ऐसी लगती है मानो अपने पति कामदेव को वशीभूत करने के लिये (मोहित करने के लिये) रति ने सोलह श्रृंगार किये हैं।

अन्त में विश्वामित्रजी कहते हैं कि अयोध्या के सौंदर्य और साज-सज्जा को देखकर ऐसा लगता है कि अयोध्या के रूप में स्वयं श्रृंगार ही शरीर धारण करके उपस्थित हो गया है। अयोध्या सोलह श्रृंगारों का अवतार-सा प्रतीत होती है। अयोध्या में सब सुख हैं, संपूर्ण सुषमा या सौन्दर्य विद्यमान हैं। अयोध्या को देखकर ऐसा लगता है, मानो ब्रह्मा ने (अयोध्या के रूप में) इन्द्राणि की रचना कर दी हो। विद्वान लोग ऐसा मुंदर अयोध्या का भाँति-भाँति से वर्णन करते हैं।

टिप्पणी-- (1) पांडित्य प्रदर्शन। (2) प्रसाद और माधुर्य गुण। (3) अभिधा लक्षण शब्दशक्ति। (4) छन्द-कुण्डलिया। (5) अलंकार-

(अ) उत्प्रेक्षा- (i) पंडित अति सिगरी पुरी, मनहुँ गिरा गति गूढ़।

(ii) सिंह चढ़ि जनु — अमूढ़।

(iii) सबै सिंगार' — मौहै।

(iv) मनो सची — पंडित।

(ब) उपमा- देव संगदिति सी सौहै।

(स) उल्लेख- अयोध्या का अनेक प्रकार से वर्णन होने में।

(द) अनुप्रास- सहज दर्शनीय।

(9) ✓

मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।

होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय ॥

दुर्गत दुर्गन ही जो कुटिल गति सरीतन ही में।

श्रीफल को अभिलाप प्रकट कविकूल के जी में ॥

शब्दार्थ- मूलन = जड़ों की। अधोगति = नीचे की ओर गति, अग्रपतन। होम = यज्ञ। हुतासन = अग्नि। धूम = धुआँ। एकै = एकमात्र। मलिनाइये = मलिनता, मैलापन। दुर्गति = दुर्दशा, दुर्गम्यता (जहाँ पहुँचना कठिन हो, जिस तक गति न हो सके), दुर्गन = किलों। कुटील = टेढ़ी, दुष्ट। सरितन = नदियाँ। श्रीफल = (1) श्री अर्थात् लक्ष्मी का फल या इच्छा, सम्पत्ति का चाह (2) नारियल या बेल।

प्रसंग- विश्वामित्रजी अयोध्या में सर्वत्र उज्वलता और पवित्रता का दर्शन करते हैं। इस बात को आलंकारिक शैली में इस छंद में कहा गया है।

व्याख्या- विश्वामित्रजी कहते हैं कि जहाँ अर्थात् अयोध्या से किसी व्यक्ति की अधोगति नहीं है, अर्थात् सभी लोग उच्चाशय उन्नतिशील हैं। यदि कहीं अधोगति शब्द का उल्लेख मिलता है तो वृक्षों की जड़ों के सम्बन्धों में। जड़ें स्वभाव से ही आगे पृथ्वी के नीचे की ओर बढ़ती हैं। अयोध्या के पेड़ों की जड़ें भी इसका अपवाद नहीं हैं। वे भी अधोगति वाली हैं, लेकिन अन्य कहीं भी किसी की अधोगति या पतन नहीं दिखाई पड़ता।

इसी प्रकार मलिनता शब्द अयोध्या में प्रायः निरर्थक-सा है। यहाँ किसी भी व्यक्ति में मलिनता नहीं है। हाँ यज्ञ के धुएँ में मलिनता अवश्य है। नगर में एक यही ऐसी वस्तु है, जिसमें मैलापन है, शेष सब कुछ स्वच्छ हैं, निर्मल हैं। किसी भी नागरिक का आचरण अपवित्र (मलीन) नहीं है।

इसके अतिरिक्त दुर्गति भी अयोध्या में किसी की नहीं होती। यहाँ दुर्गति या अगम्य मति है तो केवल किलों में, दुर्गों में। भाव यह है कि दुर्गों की दृढ़ता के कारण उनमें गति (पहुँच) संभव नहीं है। अतः दुर्गति उन्हीं के संदर्भ में प्रस्तुत शब्द हैं। मनुष्य के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अयोध्या में नहीं किया जा सकता, क्योंकि यहाँ सभी सुंदर गति को प्राप्त हैं। यहाँ की नदियों में ही कुटील (टेढ़ी) गति है, यहाँ के मनुष्य बहुत सरल-सीधे हैं, उनमें कुटिल गति नहीं है।

अन्त में विश्वामित्रजी अयोध्यावासियों की सम्पन्नता का एक और उदाहरण देते हैं कि अयोध्या में किसी भी व्यक्ति के हृदय में श्रीफल (लक्ष्मी) की इच्छा नहीं है, अर्थात् सभी की धन-सम्पत्ति सम्बन्धी इच्छायें पूरी हो चुकी हैं, सभी सम्पन्न हैं। श्रीफल की इच्छा यदि शेष है तो एक स्थल पर केवल कविगुण सुंदरियों के पयोधरों (स्तनी) की उपमा के लिये श्रीफल शब्द का प्रयोग (अभिलाषा) करते हैं। उनके मन में श्रीफल शब्द केवल अलंकार प्रयोग के लिये आता है।

टिप्पणी- (1) केशव का पांडित्य दर्शनीय है। (2) प्रसाद गुण। (3) लक्षणा और व्यंजना शब्दशक्ति। (4) परिसंख्या अलंकार। (5) ब्रज भाषा। (6) छंद रोला।

(10)

अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि।
मन मोहो रिसिराज का, अद्भुत नगर निहारि ॥
नागर नगर अपार, महा मोहतम मित्र से।
तृस्ना लता कुठार, लोभ समुद्र अगस्त्य से ॥

शब्दार्थ- चलदलै = चलदल अर्थात् पीपल का पत्ता। विधवा = (1) पतिहीन (2) धवा नामक वृक्ष से वि (रहित)। रिसिराज = ऋषिराज, विश्वामित्र। नागर = नागरिक। चतुर मित्र = सूर्य। कुठार = कुल्हाड़ी। अगस्त्य = एक ऋषि जिन्होंने समुद्र को पी लिया था।

प्रसंग- विश्वामित्रजी को अयोध्यावासियों में गुण ही गुण दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत छंद

में उन्होंने अयोध्या के नागरिकों की स्थिर चिन्ता, सौभाग्य, मोह, लोभ और तृष्णा आदि से मुक्त होने का वर्णन किया है।

व्याख्या- विश्वामित्रजी कहते हैं कि अयोध्या के लोगों में चंचलता नहीं है। वे स्थिरचिन्त हैं। वैसे यदि चंचलता है तो बस पीपल के पत्ते में अर्थात् वह हवा में हिलता रहता है। इसे यदि कोई कहे कि अयोध्या में चंचलता है, तो भले ही कहे, परन्तु अयोध्या के लोगों ने मन की चंचलता को जीत लिया है। अयोध्या में कोई स्त्री विधवा नहीं है। हाँ वहाँ के बगीचों में 'धवा' नामक वृक्ष नहीं, इसलिये कोई कह सकता है कि बगीचा विधवा (वि + धवा) अर्थात् धवा वृक्ष से हीन है।

ऐसे अद्भुत, विलक्षण, अनोखे नगर को (जिसमें गुण ही गुण हैं, सौंदर्य ही सौंदर्य है) देखकर श्रेष्ठ ऋषि विश्वामित्र का मन भी इस नगर के प्रति अनुराग से भर उठा। इस नगर के लोग बहुत चतुर हैं जो महा मोह रूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान हैं अर्थात् जिस प्रकार सूर्य के सामने मोह नहीं टिकता, उसी प्रकार अयोध्या के नागरिकों के सामने मोह नहीं टहर पाता। उन्होंने मोह को जीत लिया है। ये लोग तृष्णा रूपी बेल (लता) के लिए कुल्हाड़ी के समान हैं अर्थात् इन्होंने अपने मन की तृष्णाओं को नष्ट कर डाला है। लोभ के समुद्र के लिये ये लोग अगस्त्य मुनि के समान हैं अर्थात् इन्होंने लोभ को पी डाला है। इनके लोभ का लेश भी नहीं है।

टिप्पणी- (1) अयोध्यावासियों के गुणों का आलंकारिक वर्णन हुआ है। (2) प्रसाद गुण (3) लक्षणा और व्यंजना शब्दशक्ति। (4) प्रथम दो पंक्तियों में दोहा छंद है और शेष दो में सोरठा। (5) अलंकार -

(अ) परिसंख्या- अति चंचल — नाहि।

(ब) काव्यलिङ्ग- 'अद्भुत' में।

(स) उपमा- (i) (महो मोहतम) मित्र से।
(ii) (तृष्णा लता) कुटार (जाहज)
(iii) (लोभ समुद्र) अगस्त्य (साहज)

(द) रूपक- (i) महामोहन (मोह रूपी अंधकार)
(ii) तृष्णा लता (तृष्णा रूपी बेल)
(iii) लोभ समुद्र (लोभ रूपी समुद्र)

(11) ✓

विधि के समान है विमानीकृत राज हंस, विविध विवुध युत मेरु सो अंचल है।
दीपति दिपति अति सातो दीप दीपियतु, दूसरो दिलीप सो मुदक्षिणा को बल है ॥
सागर उजागर की बहुवाहिनी को पति, छनदान प्रिय किधौं सूरज अमलु है।
सब विधि समरथ राजे राजा दशरथ, भगीरथी पथगामी गंगा कैसे जलु है ॥

शब्दार्थ- विधि = ब्रह्मा। विमानी कृत = (1) विमान रूप से प्रयुक्त (2) वि + मानी + कृत अर्थात् मान रहित पराजित किए हुए। राजहंस = (1) पक्षी विशेष (2) राजाओं में हंस अर्थात् श्रेष्ठ राजा। विवुध = (1) देवता (2) विद्वान; पंडित लोग। दिपति-दीपति। दिपति अति = बहुत प्रदीपित हैं, प्रकाशित हैं, फैली हुई हैं। दीपियतु = प्रकाशयुक्त हो जाते हैं। मुदक्षिणा = (1) राजा दिलीप की पत्नी का नाम (2) सु + दक्षिणा अर्थात् भली प्रकार दिया हुआ दान, जो खोलकर किया गया दान। उजागर = प्रकट, साक्षात्। बहु = अनेक। वाहिनी = (1) सेना (2) नदी। छन-दान प्रिय = (1) प्रतिक्षण दान देना जिन्हें प्रिय है। (2) छनदा + न प्रिय = छनदा (छणदा) अर्थात् विजली को प्रिय न हो आकाश में विजली तभी चमकती है, जब घटा होती है, सूर्य का

प्रकाश नहीं होता, इसलिये सूर्य को क्षणदा का अप्रिय बताया गया है। अमलु = मल रहित। निर्मल = स्वच्छ, उज्ज्वल। राजै = राज्य करते हैं, सुशोभित होते हैं। भगीरथ पथ गामी = (1) भगीरथ द्वारा निर्मित निश्चित या निर्दिष्ट पथ पर चलने वाली गंगा (2) भगीरथ पथ अर्थात् प्रतिज्ञा का पालन करने वाला अथवा भगीरथ की नीतियों पर चलने वाली। कैसी = जैसा, समान।

प्रसंग- प्रस्तुत छन्द में केशवदासजी ने अयोध्या के राजा दशरथ के पराक्रम क्रांति दानशीलता तथा दृढ़प्रतिज्ञा का वर्णन किया है। राजमहल में पहुँचने पर वैताल (वन्दीजन या भाट) राजा दशरथ के गुणों की महिमा का बखान करते हुए विश्वामित्र को यह बताते हैं कि दशरथजी बहुत वीर, यशस्वी, उदार और दानी राजा हैं, अतः वे राम और लक्ष्मण को माँगने पर निःसंकोच होकर मुनि को उन्हें दे देंगे।

व्याख्या- राजा दशरथ की तुलना करते हुए वैताल कहता है कि दोनों ही 'विमानी कृत राजहंस' हैं अर्थात् ब्रह्माजी ने हंस को विमान बना रखा है, तो दशरथ ने बड़े-बड़े राजाओं (राजहंस) को विमानीकृत (मानरहित) कर दिया है, उन्हें पराजित कर अपने अधीन कर लिया।

जिस प्रकार सुमेरु (अंचल) पर विविध देवता (विवुध) निवास करते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ भी सुमेरु पर्वत के समान स्थिर हैं, अचल और अटल तथा उनके दरवार में अनेक पंडित (विवुध) रहते हैं।

राजा दशरथ की कांति अत्यंत प्रबल है और उनके तेज से सातों द्वीप प्रकाशित हैं अर्थात् सातों द्वीप में उनके बल, पराक्रम, ओज और कांति की चर्चा फैली हुई है (अथवा उनके यज्ञ की दीप्ति सातों लोकों को प्रकाशित करती है)। इस प्रकार वे राजा दिलीप के समान तेजस्वी एवं पराक्रमी हैं, जिस प्रकार दिलीप को अपनी गुणमति, चरित्रमति और पवित्र धर्मा (सुदक्षिणा) की शक्ति प्राप्त थी, उसी प्रकार दशरथ को भी प्रचुर दान (सु+दक्षिणा) के कारण बहुत शक्ति प्राप्त है। दान देने से कीर्ति और शक्ति बढ़ती है।

राजा दशरथ महाराज सागर के समान हैं और उनके पास अनेक सेनायें हैं। यह कहा जा सकता है कि दशरथजी साक्षात् उजागर हैं, क्योंकि सागर या समुद्र जिस प्रकार अनेक सदियों (वाहिनियों) का स्वामी होता है, उसी प्रकार दशरथ अनेक सेनाओं (वाहिनियों) के स्वामी हैं।

अथवा राजा दशरथ सूर्य हैं, यह भी कहना अनुचित नहीं होगा, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य छन्दान प्रिय (क्षणदा-न-प्रिय) अर्थात् विजली का अप्रिय होना है। सूर्य की अनुपस्थिति में ही आकाश में विजली चमकती है। उसी प्रकार दशरथ भी छन्दान प्रिय हैं, अर्थात् प्रतिक्षण दान करने को अच्छा (प्रिय) समझते हैं।

अन्त में वैताल दशरथजी की भगीरथ की नीतियों (पथ) का अनुसरण करने वाला बताया है। भगीरथ के समान दशरथजी भी सभी प्रकार से समर्थ हैं। जिस प्रकार भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिये मार्ग बनाया (यही कारण है कि गंगा को भगीरथी अर्थात् भगीरथ पथगामिनी कहा जाता है), उसी प्रकार राजा दशरथ भी भगीरथ प्रयत्न करने वाले, कठोर परिश्रमी और अपनी प्रतिज्ञा पर अविचल रहने वाले हैं अथवा राजा दशरथ भी अपने पूर्वज भगीरथ के द्वारा निर्दिष्ट पथ (नीतियों) का पालन कर रहे हैं।

टिप्पणी- (1) पांडित्य प्रदर्शन का सुन्दर परिचय प्रस्तुत छन्द में प्राप्त होता है। श्लेष के माध्यम से दो-दो अर्थों का दूर तक निर्वाह हुआ है, जिससे यह ज्ञात होता है कि केशव में पांडित्य प्रदर्शन नहीं सच्चा पांडित्य है जो स्वयं सिर पर चढ़कर बोलता है। (2) प्रस्तुत छन्द में राजा दशरथ की समता उनके वंशजों - दिलीप, सागर, भगीरथ इत्यादि से करके उन्हें रघुवंश की परम्परा के योग्य सिद्ध किया है। (3) ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, (4) कवित्त छन्द, (5) प्रसाद गुण, (6) लक्षणा और व्यंजना शब्दशक्ति, (7) अलंकार दर्शन-

- (अ) उपमा- (i) विधि के समान हैं विमानिकृत राजहंस ।
 (ii) मेरु गो अचल है ।
 (iii) गंगा कैसी जलु है ।
- (ब) श्लेष- (i) विमानिकृत- (क) विमान रूप से (ख) पराजित ।
 (ii) विबुध- (क) देवता (ख) विद्वान ।
 (iii) मुदाक्षिणा- (क) दिलीप की पत्नी (ख) प्रभुन दान ।
 (iv) छनदान प्रिय- (क) प्रतिक्षण दान जिसे प्रिय है । (ख) क्षणदा (विजली) को जो प्रिय नहीं है ।
 (v) भगीरथ पथगामी- (क) गंगा, (ख) भगीरथ का अनुसरण करने वाला ।
 (vi) वाहिनी = (क) नहीं, (ख) सेना ।
- (स) सन्देश- छनदान प्रिय किर्धो सूरज अमलु है ।
 (द) रूपक- सूरज अमलु है ।
 (य) सभंग पद यमक- दीपती दिपति अति सातो दीप दीपियतु ।
 (र) अनुप्रास- सहज स्पष्ट ।
 (ल) उल्लेख- सम्पूर्ण छन्द में-राजा दशरथ का अनेक प्रकार से वर्णन करने के कारण ।

पंचवटी वर्णन

(12)

केशव कहें अगस्ति के पंचवटी के तीर ।
 पर्णकुटी पावन करी रामचन्द्र रनधीर ॥
 फलफूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल कुल कलरव डोलैं ।
 अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, बन बन प्रति नाचति बोलैं ॥
 सारी सुक पंडित, गुन गुन मण्डित, भावनामय अरथ बखानैं ।
 देखे रघुनायक, सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानैं ॥

शब्दार्थ- अगस्ति = अगस्त्य मुनि । कहै = कथानुसार । रनधीर = जो युद्ध में धैर्य रखने वाले हैं । तरुवर = वृक्ष । रूरे = सुन्दर । सारी = सारिका, मैना । सुक = शुक, तोता । पण्डित = विद्वान । मण्डित = युक्त । भावनामय = भावनाओं से पूर्ण । सीय = सीता । सहायक = लक्ष्मण । मदन = कामदेव रामचन्द्रजी । रति = काम की पत्नी (सीता) । मधु = बसन्त (लक्ष्मण) ।

प्रसंग- बनवास के समय जब राम, लक्ष्मण और सीता ने पंचवटी में पर्णकुटी बनाकर वहाँ निवास किया तो, वहाँ हर्ष और प्रमोद की वर्षा होने लगी । प्रस्तुत छन्द में उसी का वर्णन है ।

व्याख्या- केशवदासजी कहते हैं कि अगस्त्य मुनि के कथन के अनुरूप, युद्ध में भी धैर्य धारण करने वाले श्री रामचन्द्रजी ने पंचवटी में पर्णकुटी बनाकर उसमें रहना प्रारंभ किया, उस कुटी को गर्वित किया तो उस स्थान के वृक्षों पर सुन्दर फल-फूल लद गये और कोयल, पक्षियों के समूह मधुर शब्द करके बोलने लगे । साथ ही अपने प्रियतमों के प्रेम से उन्मत्त होकर मोरनियाँ बन में नाचती हुई घूमने लगीं । विद्वान तोता और मैना जो गुणों से युक्त थे अपनी भावनाओं से मुक्त सुन्दर, सार्थक वाणी बोलने लगे । अब उन्होंने राम, सीता और लक्ष्मण को देखा तो वे क्रमशः कामदेव, रति और बसन्त से प्रतीत हुए ।

टिप्पणी- (1) राम के शुभागमन का प्रभाव वर्णित है। (2) प्रसाद और माधुर्य गुण
(3) अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति। (4) ब्रज भाषा। (5) अलंकार-

(अ) अनुप्रास- सहज स्पष्ट।

(ब) उत्प्रेक्षा- मनहुँ मदन रति मधु जान।

(स) यथासंख्या- राम, सीता और लक्ष्मण की क्रमशः कामदेव, रति और वसन्त कहने में।

(13)

लक्ष्मण- सख जाति फटी दुःख की दुपटी,
कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटि रुचि मीचू घटी हूँ घटी,
जग जीव जतीन की छुटी तटी।
अध ओध की बेरी कीट विकटी,
निकटी प्रकटी गुरु जान गटी ॥
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी,
गुन धूरजटी बन पंचवटी ॥

शब्दार्थ- दुपटी = चादर। घटी = घड़ी, अल्प समय। निघटि = कम हुई। मीचू = मृत्यु।
घटी हूँ घटी = घड़ी-घड़ी, प्रतिक्षण। जतीन = यतीगण। तटी = समाधि। अध = पाप।
ओध = समूह। बेरी = बेड़ी श्रृंखला। गटी = गठरी। धूरजटी = जिसकी जटाओं में धूल है, अर्थात्
शिवजी।

प्रसंग- प्रस्तुत छन्द में आचार्य केशवदास ने पंचवटी के मुखद प्रभाव का वर्णन किया है। लक्ष्मण का कथन है कि पंचवटी शान्तिदायिनी और आनन्द प्रदायिनी है। पंचवटी में पदार्पण करने वाले व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते हैं। यहाँ प्रकृति की उन्मुक्त लीला होती रहती है और पंचवटी भगवान शिव के समान सिद्धि प्रदान करने वाली है।

व्याख्या- लक्ष्मण के मुख से पंचवटी का वर्णन करते हुए केशवदासजी कहते हैं कि पंचवटी में पैर रखते ही दुःख की चादर फट जाती है अर्थात् दुःखों का अन्त हो जाता है। पंचवटी के कपट-हृदय व्यक्ति एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। यहाँ की पावन भूमि के प्रभाव से मृत्यु का नाश करने का स्वभाव भी घट जाता है अर्थात् यहाँ अमरत्व का आनन्द है। यहाँ आकर संसार के जीवों और यतियों की समाधि भी टूट जाती है अर्थात् समाधिस्थयोगी को भी इतना आनन्द प्राप्त नहीं होता, जितना यहाँ आकर साधारण जीवों या प्राणियों को मिलता है। यहाँ आने वाले व्यक्ति पापों की बेड़ियों से मुक्त हो जाते हैं और उनके सामने ज्ञान की गठरी खुल जाती है अर्थात् उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ मुक्तिरूपी नदी चारों ओर नाचती रहती है अर्थात् यहाँ आकर व्यक्ति को मुक्ति का लाभ मिल जाता है। अन्त में केशवदास पंचवटी को शिवशंकर के समान गुणों से युक्त बताते हैं। कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार शिवजी संसार का कल्याण (शिव) करते हैं, उसी प्रकार पंचवटी में आने वाला व्यक्ति भी कल्याण को प्राप्त होता है।

टिप्पणी- (1) यहाँ पंचवटी को परम आनन्द अथवा मोक्ष की दात्री बताकर पंचवटी के पुण्य प्रभाव का वर्णन हुआ है। (2) प्रसाद गुण। (3) अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति। (4) सवैया छन्द। (5) ब्रजभाषा का प्रयोग। (6) अलंकार दर्शन-

(अ) रूपक- (i) दुःख की दुपटी।

(ii) अध ओध की बेरी।